

# सिमरन

भाग - १२

परमार्थ में जीव की 'सुरति' के चार पड़ाव बताये जाते हैं —

1. **जागृत अवस्था** :- जागृत अवस्था में हम सब जीवों का मन बाहरमुखी मायकी रुझानों में गलतान रहता है —

इहु मनु धंधै बांधा करम कमाइ ॥

माइआ मूठा सदा बिललाइ ॥ (पृ. ११७६)

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥ (पृ. १३३)

नानक नामु न चेतनी अगिआनी अंधुले अवरे करम कमाहि ॥  
(पृ. ६४८)

इस अवस्था में हमारे मन को 'अहम्' अथवा माया के इलावा और कुछ सूझता ही नहीं ।

हउमै ममता मोहणी मनमुखा नो गई खाइ ॥

जो मोहि दूजै चितु लाइदे तिना विआपि रही लपटाइ ॥  
(पृ. ५१३)

भूलिओ मनु माइआ उरझाइओ ॥

जो जो करम कीओ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइओ ॥  
(पृ. ७०२)

साधो इहु जगु भरम भुलाना ॥

राम नाम का सिमरनु छोडिआ माइआ हाथि बिकाना ॥ (पृ. ६८४)

ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ ॥

कैसे बूझै जब मोहिआ है माइआ ॥ (पृ ९२)

हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ॥ (पृ ५६०)

मनु माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु ॥

कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम ॥ (पृ १४२८)

2 सुपन अवस्था :- जब हमें नींद आ जाती है, तब नींद में हमारे जीवन के पिछले कर्मों की फिल्म (film) हमारे मन पर उभर आती है।

सारा संसार इन दोनों मानसिक अवस्थाओं 'जागृत' तथा सुपन में ही प्रवृत्त तथा गलतान है। यह सब मायकी 'बाहरमुखी' द्वैत भाव का 'विराट नाटक' है जिसमें अहम् का ही बोलबाला तथा प्रचलन है।

ऐसे जीवों को अन्तर्मुखी 'आत्मिक-जीवन' का कोई ज्ञान ही नहीं तथा न ही इस विषय में कुछ जानने की आवश्यकता प्रतीत होती है। कुछ विरले भाग्यवान 'गुरुमुख-जन' ही अन्तर्मुखी होकर आत्मिक मंडल की 'प्रिम-खेल' खेलते हैं —

ऐसे जन विरले संसारे ॥

गुर सबदु वीचारहि रहहि निरारे ॥ (पृ १०३९)

कोटि मधे को विरला सेवकु होरि सगले बिउहारी ॥ (पृ. ४९५)

कोटन मै नानक कोऊ नाराइनु जिह चीति ॥ (पृ १४२७)

जग महि उतम काढीअहि विरले केई केइ ॥ (पृ ५१७)

गुर का सबदु को विरला बूझै ॥ (पृ १२०)

नानक बिरले पाईअहि जो न रचहि परपंच ॥ (पृ २९७)

3 शून्य अवस्था :—

यह सुरति की 'विचारहीन' (अफुर) 'शून्य अवस्था' है।

सिंमरन द्वारा मन ँकाग होने के कारण जिज्ञासु अपने अन्दर अनन्त शक्तियाँ महसूस करता है, जिन्हें वह कई प्रकार से प्रयोग करता है, जैसे —

रिद्धियाँ-सिद्धियाँ

करामात

हिप्नोटिज़म (hypnotism)

मैसमेरिज़म (mesmerism)

काला जादू (black magic)

तान्त्रिक-योग

वाक्-सिद्धि

अन्तरयामिता

आदि ।

जिज्ञासु इन लुभावने अचम्भों तथा जादू-टोनो में भली-भाँति मस्त हो जाता है और इसे ही आत्मिक 'मंजिल' समझ लेता है। साधारणतय योगियों का परमार्थ यहाँ तक ही सीमित होता है।

इन तीनों अवस्थाओं में —

- 1 माया की 'छाया' होती है।
- 2 सूक्ष्म 'अहम्' का अंश होता है।

जन्म-जन्मान्तरों से हम बाहरमुखी मायिकी-संसार में विचरण करते आये हैं। अज्ञानता में हमें समझ ही नहीं आती कि बाहरमुखी मायिकी जीवन के इलावा कोई —

उत्तम

अति-उत्तम

सुहावना

सुखदायी

अन्तर्मुखी

'आत्म-जीवन' भी है।

हमारा मन बाहरमुखी 'मायकी मंडल' में ही बेपरवाह होकर 'घुड़दौड़' लगाने का आदि हो चुका है ! इसे अन्तर्मुखी होना अति कठिन तथा असंभव लगता है —

आरवणि अउरवा साचा नाउ ॥ (पृ. ९)

परन्तु गुरबाणी में स्पष्ट हुकम है —

बाहरि जातौ ठाकि रहावै गुरमुखि सहजि समावै ॥  
(पृ. १३३२)

सेरवा चउचकिआ चउवाइआ एहु मनु इकतु घरि आणि ॥  
एहड़ तेहड़ छडि तू गुर का सबदु पछाणु ॥ (पृ. ६४६)

मन मेरिआ अंतरि तेरै निधानु है बाहरि वसतु न भालि ॥  
जो भावै सो भुंघि तू गुरमुखि नदरि निहालि ॥  
गुरमुखि नदरि निहालि मन मेरे अंतरि हरि नामु सरवाई ॥  
मनमुख अंधुले गिआन विहूणे दूजै भाइ खुआई ॥ (पृ. ५६९)

मिलिए मिलिआ न मिलै मिलै मिलिआ जे होइ ॥  
अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोइ ॥ (पृ. ७९१)

#### 4. चौथा पद :-

जिसको —

आत्म-मंडल

तुरीया-अवस्था

ब्रह्म-मंडल

परम पद

निजघर

सहज-घर

अनुभव नगर

अविचल नगर

बेगम-पुरा

सचरकं

— आदि नामों द्वारा भी जाना जाता है।

यहाँ —

नाम का प्रकाश है।  
नाम की रुनझुन है।  
नाम की जीवन रों है।  
नाम का महारस है।  
नाम का रंग है।  
नाम की मस्ती है।  
नाम का आह्लाद है।  
अनहद धुन बजती है।  
अनहद शब्द 'रवि रहिआ भरपूर'  
(कण-कण में समाया) है।

इस अवस्था में बरबो हुए गुरुमुख प्यारे रहते हैं, जो प्रभु की पावन उपस्थिति में 'प्रिम-प्याले' का रंग-रस पान कर के अलमस्त मतवारे हो जाते हैं-

बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै सहज रंग रचि रहिआ ॥  
अहिनिसि बनी प्रेम लिव लागी सबदु अनाहद गहिआ ॥

(पृ. ३६०)

यहाँ सतिगुरु अपने रंग-रत्ते गुरुमुखों को —

प्यार करता है  
लाड लडाता है  
खेल खिलाता है  
प्रितपालता है  
नित्य प्रति सेवा-संभाल करता है  
पाप काटता है  
कलह-क्लेश से बचाता है  
यम से रक्षा करता है  
मुक्ति प्रदान करता है

प्रेम-प्याला पिलाता है  
प्रीत-डोरी से रवीचता है  
सिमरन कराता है

**सिमरन-जीवन** की बख्शिाश करता है।

खेलि खिलाइ लाड लाडावै सदा सदा अनदाई ॥  
प्रतिपालै बारिक की निआई जैसे मात पिताई ॥ (पृ १२१३)  
हरि जी माता हरि जी पिता हरि जीउ प्रतिपालक ॥  
हरि जी मेरी सार करे हम हरि के बालक ॥  
सहजे सहजि खिलाइदा नही करदा आलक ॥  
अउगणु को न चितारदा गल सेती लाइक ॥  
मुहि मंगां सोई देवदा हरि पिता सुखदाइक ॥  
गिआनु रासि नामु धनु सउपिओनु इसु सउदे लाइक ॥  
साझी गुर नालि बहालिआ सरब सुख पाइक ॥  
मै नालहु कदे न विछुड़ै हरि पिता सभना गला लाइक ॥  
(पृ ११०१-२)

यह आत्म-मंडल—

**‘निरमल हूं अति निरमलीआ’ (अत्यन्त निर्मल) है।**

**यहाँ माया की छाया नहीं है।**

**यहाँ अहम का अभाव है।**

यहाँ —

सदा-रवै

सदा सुख

सदा खुशी

प्रीत

प्रेम

स्स

चाव

नाम

प्रवृत्त होता है।

वास्तव में इस सूक्ष्म आत्मिक अवस्था को हमारी अल्प बुद्धि पकड़ ही नहीं सकती, ब्यान ही नहीं कर सकती, क्योंकि यह तो अनुभवी तत् (Divine Essence) है जो अन्तर्त्मा में 'अनुभव' द्वारा सतिगुरु की कृपा से बूझा-सीझा-महसूस किया जा सकता है। इसको कोई विरला जिज्ञासु ही बूझता है—

गुरमुखि विरला कोई बूझै सबदे रहिआ समाई ॥ (पृ १३३२)

नामि रते सदा सुखु होई ॥

गुरमुखि विरला बूझै कोई ॥ (पृ ८४१)

शराबी शराब पीने का अभ्यास करके स्वयं ही शराब का 'स्वरूप' बन जाता है। फिर वह शराब को खुद नहीं याद करता, बल्कि उसका मन-तन-अन्तःकरण अथवा सम्पूर्ण 'अस्तित्व' (self) शराब के लिए तड़पता है तथा उसके हर कार्य तथा सोच-विचार में 'शराब' की झलक सहज-स्वभाव प्रकट होती है।

इसी प्रकार जब जिज्ञासु 'गुरुमंत्र' उसका मन-चित्त द्वारा 'सिमरन' करता है, तब धीरे-धीरे 'गुरुमंत्र' उसके मन-चित्त-अन्तःकरण में धँस-वस-रस जाता है तथा जिज्ञासु 'सिमरन' का ही स्वरूप बन जाता है। 'सिमरन' की इस अवस्था को गुरबाणी इस प्रकार दर्शाती है —

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं ॥

जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू ॥ (पृ १३७५)

बोतल में पड़ी शराब का स्वरूप कड़वा-कसैला, रंग-बिरंगा, मिश्रित घोल (coloured solution) ही होता है, परन्तु उसके पीने से तो 'सरूर' आता है वह अदभुत होता है।

केवल मात्र —

शराब के नाम  
दिमागी जानकारी  
बोतलों की बाहरी संगत  
या

शराब के गुण-अवगुण के ज्ञान से 'सरूर' नहीं आ सकता। यह 'सरूर' शराब के 'शाब्दिक ज्ञान' से विलक्षण है, अलग है।

परन्तु जब शराब पी जाये, तब वही शराब किसी अकथनीय सरूर में बदल जाती है। शराब का अस्तित्व नहीं रहता—परन्तु उसका असर अनोखे उमाह, उत्साह, सरूर तथा मस्ती के रूप में प्रवृत्त होकर प्रकट होता है।

ठीक इसी प्रकार सिमरन-अभ्यास करते-करते 'गुरुमंत्र' हमारे तन-मन-बुद्धि-अन्तःकरण में समा जाता है तथा किसी भाग्यशाली क्षण 'आत्म-कला' की 'छुह' द्वारा इलाही रस-रंग-प्रीत-प्यार में बदल जाता है।

इस प्रकार जिज्ञासु का सिमरन 'ध्यान' में बदल जाता है तथा उसका 'जीवन-रूप' ही बन जाता है।

गुरुमुख-जन नाम के रंग-रस में अलमस्त-मतवारा हो कर अकथनीय आत्मिक उत्साह-उमाह में विचरण करता है, जिसे गुरुमति में 'चढ़दीआं कलां' कहा जाता है।

माई री पेखि रही बिसमाद ॥

अनहद धुनी मेरा मनु मोहिओ अचरज ता के स्वाद ॥

(पृ १२२६)

देखहु अचरजु भइआ ॥

जिह ठाकुर कउ सुनत अगाधि बोधि सो रिदै गुरि दइआ ॥

(पृ ६१२)



याद ररवने वाली जरूरी बात यह है कि शराब का 'सरूर' अस्थायी तथा हानिकारक है, परन्तु 'नाम' का सरूर अथवा 'खुमारी' हमेशा चढी रहती है।

हरि रसु पीवत सद ही राता ॥

आन रसा खिन महि लहि जाता ॥

हरि रस के माते मनि सदा अनंद ॥

आन रसा महि विआपै चिंद ॥ (पृ ३७७)

हम गृहस्थीजन हैं तथा हमसे योगियों वाली समाधियाँ नहीं लग सकती। इसलिए सतिगुरु ने हमें 'साध संगति' अथवा सति संगति की सरल 'साधना' बताया है, जिसे 'सहज-योग' या 'सहज-समाधि' कहा गया है —

इकु उतम पंथु सुनिओ गुर संगति

तिह मिलंत जम त्रास मिटाई ॥ (पृ १४०६)

साधसंगति कै आसरै प्रभ सिउ रंगु लाए ॥

अउगण कटि मुखु उजला हरि नामि तराए ॥ (पृ ९६६)

हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा ॥

कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना ॥

(पृ ६४२)

कोटि करम करि देह न सोधा ॥

साधसंगति महि मनु परबोधा ॥ (पृ १२९८)

गुरमुखि मारगु धनु है साधसंगति मिलि संगु चलाइआ ।

(वा .भा. गु. ६\१६)

साध जना कै संगि भवजलु तारीअनु ॥

(पृ ५१७)

साधसंगि मिलि हरि गुण गाए इहु जनमु पदारथु जीता रे ॥

(पृ ४०४)

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ॥ (पृ. ६३१)

सिमरन करते हुए सतिगुरु की अपार बरिष्वाश द्वारा जिज्ञासु के निर्मल हृदय की तारों पर जब कभी आत्मिक 'चमक' पड़ती है अथवा नाम की 'कला घटती' है, तो जिज्ञासु इस 'अनोखे आन्तरिक' अनुभव से आश्चर्यचकित हो जाता है तथा उसे शरीर में कोई रुनझुन अथवा कंपन सा अनुभव होता है।

दरसन देखत ही सुधि की न सुधि रही  
बुधि की न बुधि रही मति मै न मति है। (क. .भा. गु. ९)

देखि चरित्र भइ हउ बिसमनि  
गुरि सतिगुरि पुरखि मिलाई ॥ (पृ १२०७)

लोइण देखि रहे बिसमादी चितु अदिसटि लगाई ॥ (पृ ९१०)

यदि जिज्ञासु भाग्यशाली हो, तब उसे यह अन्तात्मिक अनुभव 'नाम-कला' या 'रुनझुन' जल्दी-जल्दी होने लगते हैं। इस दशा में जिज्ञासु को ज्ञान होना चाहिए कि यह 'आत्मिक कौतुक' सतिगुरु की अपार 'बरिष्वाश' है जिसे अन्तात्मा में अनुभव करते हुए 'जरने' (पचाने) की आवश्यकता है।

इस अति सूक्ष्म तथा 'नाजुक अवस्था' में बरिष्वाश हुए गुरुमुख प्यारों का मार्गदर्शन तथा सहायता अति आवश्यक है।

परन्तु देखने में आया है कि संगत में कई सज्जन दिखावे के लिए कई प्रकार की अनहोनी हरकतें करते हैं, ताकि संगत का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो जाए। इस प्रकार उनकी आत्मिक उन्नति रुक जाती है तथा कुछ समय बाद वह अवनति की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

कई आत्मिक मार्ग के राही इस आत्म-देश की अमूल्य 'अजर वस्तु' को मायकी स्वार्थों की पूर्ति तथा वाह-वाह और बढ़पन के लिए प्रयोग करके अपने अहम् को तगड़ा करते हैं, जो एक आत्मिक पाप है।

दूसरी ओर, ज्यों-ज्यों जिज्ञासु इस नाम-कला को अन्तर्त्मा में अनुभव करता तथा स्थायी बनाता है, त्यों-त्यों उसका मन नम्रता तथा शुक्राने में भीग जाता है तथा वह सतगुरु की अन्य अनेक बख्शिओं का पात्र बनता जाता है।

यह योगियों वाला थोथा, मशीनी (mechanical) 'सिमरन' नहीं होता, यह तो प्रेमा भक्ति से उत्पन्न 'सिमरन जीवन' है तथा सतगुरू के दरघर की —

आत्मिक दात है।  
 गुर प्रसादि है।  
 कृपा-दृष्टि है।  
 प्रेमा-भक्ति है।  
 प्रेम-खेल है।  
 प्रेम-प्याला है।  
 प्रेम-पदार्थ है।  
 नाम है।  
 नाम की कला है।  
 नाम का रस है।  
 नाम का रंग है।  
 जीवन-पदवी है।

जब कभी साध-संगति में सिमरन द्वारा जीव इलाही 'प्रेम-डोरी' का 'कंपन' अनुभव करता है तब जीव के अन्तर्त्मा में अपनी 'इलाही माँ' अकाल पुरुष की याद, चाह, आकर्षण, प्यार उत्पन्न होता है तथा वह इलाही 'माँ की गोद' का अथाह प्यार, रस, शान्ति अनुभव करता है।

उपजी प्रीति प्रेम रसु चाउ ॥ (पृ २९०)

इसके पश्चात् गुरुमंत्र प्यारा एवं रसदायक लगता है, और धीरे-धीरे हमारे मन-तन-अन्तःकरण-रोम-रोम में गहरा धँस-बस-रस कर दृढ़ हो जाता है तथा हमारा मन 'गुरुमंत्र' का ही 'रूप' बन जाता है।

इस उच्च पवित्र-पावन आत्मिक अवस्था अथवा **दृढ़ हुए सिमरन** की 'सहज-समाधि' में इतना महारस तथा चाव होता है कि 'जीव' इस प्रेम-रस को छोड़ ही नहीं सकता ।

तेरा जनु राम रसाइणि माता ॥

प्रेम रसा निधि जा कउ उपजी छोडि न कतहू जाता ॥

(पृ ५३२)

मू लालन सिउ प्रीति बनी ॥ रहाउ ॥

तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधो खिंच तनी ॥ (पृ ८२७)

बिसरत नाहि मन ते हरी ॥

अब इह प्रीति महा प्रबल भई आन बिखै जरी ॥ (पृ ११२०)

जैसे शराबी को समय पर शराब न मिले, तो उसकी 'कमी' से उसका बुरा हाल हो जाता है। इसी प्रकार जब कभी जीव का 'ध्यान' इस प्रेम-रस में से निकलता है, तब वह **जीते जी 'मर' जाता है** —

हरि बिनु रहि न सकउ इक राती ॥

जिउ बिनु अमलै अमली मरि जाई है

तिउ हरि बिनु हम मरि जाती ॥

(पृ ६६८)

ऐसी विस्मादी, रहस्यमयी आत्मिक अवस्था में जीव, अपनी आन्तर्त्मा में —

रुन्झुन

शब्द-सुरति

नाम-रस

अनहद-धुन

प्रीत

प्रेम

रस

चाव

— अनुभव करता हुआ 'सहज-समाधि' में लीन हो जाता है।

ऐसे बरखो हुए जिज्ञासु की अवस्था को गुरुबाणी में इस प्रकार दर्शाया गया है —

साचि नामि मेरा मनु लागा ॥

लोगन सिउ मेरा ठाठा बागा ॥१॥

बाहरि सूतु सगल सिउ मउला ॥

अलिपतु रहउ जैसे जल महि कउला ॥१॥ रहाउ ॥

मुख की बात सगल सिउ करता ॥

जीअ संगि प्रभु अपुना धरता ॥२॥

दीसि आवत है बहुतु भीहाला ॥

सगल चरन की इहु मनु राला ॥३॥

नानक जनि गुरु पूरा पाइआ ॥

अंतरि बाहरि एकु दिखाइआ ॥४॥

(पृ ३८४-८५)

यह 'आत्म-जीवन'—

सिमरन वाला जीवन है।

प्यार वाला जीवन है।

थर-थराता जीवन है।

लरजता जीवन है।

रस वाला जीवन है।

रंग वाला जीवन है।

शान्ति वाला जीवन है।

रुनझुन वाला जीवन है।

नाम-रकुमारी वाला जीवन है।

विस्मादी जीवन है।

अनहद धुन वाला जीवन है।

सहज-समाधि है।

नाम की अकल कला है।

ऐसे 'विस्मादी जीवन' का अन्तर्त्मा में सतगुरु की बरिखिश द्वारा ही आनंद लिया जा सकता है तथा अनुभव किया जा सकता है।

यह अनोखी, 'आत्म-मंडल' अथवा 'शब्द-सुरति' की खेल है  
जिसे कोई विरला गुरुमुख ही —

बूझता है

समझता है

अनुभव करता है

अभ्यास करता है

आनन्द लेता है।

यह 'शब्द-सुरति' की 'आत्म खेल' हमारी अल्प-बुद्धि की —  
समझ

ज्ञान

फिलोस्फी

कयास-अराइयाँ (ख्याली उड़ाने)

अंदाजे

से अलग तथा अद्भुत है।

गिआनु न गलीई दूढीऐ कथना करड़ा सारु ॥ (पृ. ४६५)

कथनी कहि भरमु न जाई ॥

सभ कथि कथि रही लुकाई ॥ (पृ. ६५५)

यह उच्च, पवित्र-पावन अवस्था हमारी शारीरिक, मानसिक या  
दिमागी साधना अथवा 'जोर' से प्राप्त नहीं की जा सकती ।

जोरु न सुरती गिआनि वीचारि ॥ (पृ. ७)

दातै दाति रखी हथि अपणै

जिसु भावै तिसु देई ॥ (पृ. ६०४)

इहु पिरम पिआला खसम का

जै भावै तै देइ ॥ (पृ. ९४७)

-क्रमशः